ऋतुओं से संबंधित गायन शैलियों की संगीतात्मक विवेचना का अध्ययन

श्रीमती पूनम
शोधार्थिनी
आर0 जी0 (पी0जी0) कॉलिज,
मेरठ, उ0प्र0
ईमेलः *pkatariya396@gmail.com*

प्रो0 वन्दना अग्रवाल
प्राचार्या (शोध निर्देशिका)
श्रीमती बी0डी0 जैन गर्ल्स
पी0जी0 कॉलिज,
आगरा

Reference to this paper should be made as follows:
Received: 20.05.2025
Approved: 10.06.2025

श्रीमती पूनम
प्रो0 वन्दना अग्रवाल

ऋतुओं से संबंधित गायन शैलियों की संगीतात्मक विवेचना का अध्ययन

Artistic Narration 2025,
Vol. XVI, No. 1,
Article No.09 pp. 064-070

Online available at:
https://anubooks.com/journal-volume/artistic-narration-june-2025-vol-xvi-no1
Referred by:
DOI:*https://doi.org/10.31995/an.2025.v16i01.009*

सारांश

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में ऋतुओं का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। प्रकृति के चक्र के अनुसार बदलती ऋतुएँ न केवल मानव जीवन को प्रभावित करती हैं, बल्कि साहित्य, कला और विशेष रूप से संगीत को भी गहराई से प्रभावित करती रही है। ऋतुओं के अनुरूप भावनाओं का प्रवाह और उसका कलात्मक अभिव्यक्ति में रूपांतरण, भारतीय संगीत की एक विलक्षण विशेषता रही है। इस शोध पत्र में मैंने यह जानने का प्रयास किया है कि लोक संगीत में ऋतुओं पर आधारित गायन शैलियाँ कैसे विकसित हुई, उनका रस–भाव और संगीतात्मक ढांचा कैसा रहा, तथा उनका सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव क्या रहा।

https://doi.org/10.31995/an.2025.v16i01.009

प्रकृति का परिवर्तन एवं उसका आम जनमानस पर प्रभावः–

परिवर्तन संसार का नियम है। संसार में हर वस्तु एक समय सीमा के बाद परिवर्तित होती रहती है और इसी श्रृंखला में प्रकृति का भी परिवर्तन होता है और प्रकृति के ही परिवर्तन को ''ऋतु'' कहते हैं।

ऋतु परिवर्तन होने पर वातावरण में कुछ दृश्य प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं। जैसे– बसंत ऋतु में फूलों का खिलना और फसलों की कटाई आदि। उसी प्रकार से ग्रीष्म ऋतु में तापमान में वृद्धि, आदि। वर्षा ऋतु में काले काले बादलों का उमड़ना और गरजना और आए दिन वर्षा होना। शरद ऋतु और हेमंत ऋतु में ठंडी हवाओं का चलना और पेड़ से पत्तों का झड़ना। शिशिर ऋतु में ठंड का बढ़ना, चारों तरफ धुंध और कोहरा छा जाना। इन ऋतुओं का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से भी मनुष्य पर पड़ता है जिसमें उसकी मनोस्थिति मुख्य है। जैसे वसंत ऋतु में मनुष्य के भीतर उमंग, उत्साह और उल्लास का संचार होना, हर समय मन का प्रफुल्लित रहना, मन का श्रृंगारिक होना। कालिदास ने भी अपने ग्रन्थ ''ऋतुसंहार'' में बसंत ऋतु को ''कामोत्सव'' भी कहा है।

ऐसी मनोस्थिति में जब स्वर और लय के माध्यम से व्यक्ति अपने मन मे भावों को व्यक्त करता है, तब बसंत ऋतु में होरी और चैती, वर्षा ऋतु में कजरी और हिंडोला जैसी ऋतुकालीन गायन शैलियां विकसित हुई। और इसी तरह से बारहमासा, छमासा और सावनी जैसी और भी ऋतुकालीन गायल शैलियां अस्तित्व में आईं। कुछ प्रमुख ऋतुओं से संबंधित गायन शैलियों का वर्णन अग्रलिखित है–

कजरीः– कजरी पूर्वी उत्तर प्रदेश का लोकप्रिय लोकगीत है। यह वर्षा ऋतु में गाया जाता है, अतः यह एक ऋतु गीत है उर्दू और फारसी साहित्यकार इसे कजली भी कहते हैं। उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में भी कजरी को कजली ही कहा जाता है।

कजरी की उत्पत्ति मिर्जापुर से मानी गई है। एक बड़ी पुरानी कहावत है–लीलाराम नगर कै भारी, कजरी मिर्जापुर सारनाम। इस कहावत में कजरी और मिर्जापुर का संबंध स्पष्ट रूप से दिखता है। कजरी मुख्य रूप से मिर्जापुर के आसपास के क्षेत्र में प्रचलित है और बिहार के भी कुछ क्षेत्रों में यह गाई जाती है। इसके अलावा मध्य प्रदेश के पूर्वी दक्षिणी एवं रीवा के पहाड़ी इलाकों में भी कजरी गाई जाती है।

कजरी की उत्पत्ति कब हुई यह कहना कठिन है परंतु कजरी उस समय भी प्रचार में थी जब मिर्जापुर अस्तित्व में भी नहीं आया था। कजरी के उद्भव के संबंध में अनेक किंवदंतिया प्रचलित हैं। इनमें से एक कथानुसार, कजरी के गीतों के जन्मदाता के रूप में, मध्य भारत के राजा दानों राय का नाम लिया जाता है, उन्होंने कज्जला देवी (विंध्याचल देवी) की स्तुति के रूप में कजरी गीतों का आविष्कार किया। एक मान्यता यह भी है कि, दानों राय की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी सती हो गई थी, तब उसे समय की महिलाओं ने अपने दुख व्यक्त करने के लिए एक नए राग में जिन गीतों के रचना की, वही कजरी के नाम से जानी गई।

एक कथा यह भी है कि कान्तित के राजा, जिनकी पुत्री का नाम कजरी था, उसे अपने पति से विशेष प्रेम था लेकिन, उसे अपने पति से अलग कर दिया गया था। वह अपने पति की याद में जो प्रेम गीत गाती थी, उसे मिर्जापुर के लोग कजरी के नाम से याद करते हैं।

वाराणसी में कजरी मिर्जापुर से आई है। एक बड़ी प्रचलित कहावत है कि कजरी का मायका मिर्जापुर और ससुराल बनारस में है। बनारस में तो कजरी गायन की एक विशिष्ट शैली विकसित हुई। कजरी एक लोकगीत है लेकिन बनारस में इसे शास्त्रीय शैली के अन्तर्गत, पूर्व अंग की ठुमरी की तरह गाया जाने

लगा। कजरी के कई प्रचलित अखाड़े हैं, परंतु उनमें से चार प्रमुख अखाड़े हैं– पंडित शिवदास मालवीय अखाड़ा, जहांगीर अखाड़ा, बैरागी अखाड़ा, अक्खड़ अखाड़ा। जबकि वाराणसी के भैरो जी के अखाड़े का नाम दूर–दूर तक फैला है। कजरी गायन की परंपरा बहुत ही प्राचीन है। 13वी शताब्दी में अमीर खुसरों द्वारा रचित कजरी की एक पंक्ति निम्नलिखित है–

''अम्मा मेरे बाबा को भेजो जी की सावन आया...।''

अमीर खुसरो के अलावा बहादुर शाह जफर, हिंदी के कवि अंबिका दत्त व्यास, श्रीधर पाठक, द्विज बलदेव, बद्रीनारायण उपाध्याय (प्रेमधन) साहित्यकार एवं कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ब्रज और भोजपुरी भाषा के अलावा संस्कृत में भी कजरी की रचना की है। कजरी मुख्यतः दो प्रकार से गाई जाती है। पुरुषों द्वारा गाई जाने वाली कजरी लोक वाद्यों एवं आधुनिक वाद्यों के साथ मंच पर बैठकर गाई जाती है। वहीं दूसरी है ढुनमुनिया कजरी, जिसे महिलाएं वृत्ताकार बनाकर झुक–झुक कर गाती हैं। कजरी के साहित्य में वर्षा ऋतु के वर्णन के साथ ही राधा–कृष्ण की लीलाओं का वर्णन मिलता है। इसका साहित्य अवधी एवं भोजपुरी भाषा में मुख्य रूप से पाया जाता है। कजरी में गायन में उल्लास, उमंग, उत्साह एवं श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। उपशास्त्रीय शैली की कजरी को पीलू व पहाड़ी आदि रागों में गाया जाता है तथा लोकगीत शैली की कजरी को काफी, बिलावल व खमाज थाट में रखा जा सकता है। कजरी की प्रकृति चंचल होती है इसी कारण से इसे अधिकतर दादरा, खेमटा व कहरवा ताल में गाया जाता है। कजरी को गाने वाले कुछ प्रमुख कलाकारों के नाम अग्रलिखित हैं–विदुषी गिरिजा देवी, सिद्धेश्वरी देवी, मालिनी अवस्थी एवं पंडित छन्नूलाल मिश्रा।

होरीः– होली भारत का अत्यंत प्राचीन पर्व है। इस पर्व का वर्णन अनेक प्राचीन धार्मिक पुस्तकों में मिलता है। इनमें प्रमुख हैं, जैमिनी के पूर्व मीमांसा सूत्र, गार्हर्य सूत्र, नारद पुराण और भविष्य पुराण की प्राचीन हस्तलिपियों और ग्रंथों में भी इस पर्व का उल्लेख मिलता है।

संस्कृत साहित्य में भी बसंत ऋतु और बसंतोत्सव कवियों के आकर्षण का केंद्र रहे हैं। सुप्रसिद्ध मुस्लिम पर्यटक अलबरूनी ने भी अपने ऐतिहासिक यात्रा संस्करण में होलीकोत्सव का वर्णन किया है। अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर के बारे में एक बात प्रसिद्ध है कि होली पर उनके मंत्री उनको रंग लगाने जाते थे, इससे स्पष्ट है कि होली पर जितना प्राचीन है, उतना ही प्राचीन इस पर्व पर गाए जाने वाला ऋतु कालीन गायन शैली होरी भी है।

होरी उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, बंगाल आदि अनेक प्रदेशों की अनेक भाषा एवं बोलियों में विभिन्न नाम से गाया जाता है। जहां मैथिली और बुंदेलखंड क्षेत्रों में इसे फाग कहा जाता है तो वहीं इसे भोजपुरी क्षेत्रों में फगुआ कहा जाता है। होली मुख्यतः दो प्रकार से गाई जाती है–(1) लोकगीत शैली, (2) उपशास्त्रीय शैली।

उपशास्त्रीय शैली की ठुमरी अंग की होली का आविष्कार लखनऊ के नवाबवाजिद अलीशाह ने किया था। होली गीतों में संयोग श्रृंगार व वियोग श्रृंगार दोनों का प्रयोग किया जताा है। यह गीत काफी, पहाड़ी, पीलू, दरबारी आदि रागों में गाए जाते हैं तथा इनके साथ दीपचंदी (चांचर), दादरा व कहारवा आदि ताल का प्रयोग किया जाता है। होरी गीत गाने वाले कुछ प्रमुख कलाकारों के नाम अग्रलिखित हैं–विदुषी गिरिजा देवी, मालिनी अवस्थी, पंडित छन्नूलाल मिश्रा, शुभा मुद्गल आदि।

चैतीः– बसंत ऋतु के उत्तरार्ध में, चैत मास में गाए जाने वाली ऋतु कालीन गायन शैली को चैता अथवा चैती कहते हैं। यह गायन शैली अत्यंत मधुर एवं लोकप्रिय है।

https://doi.org/10.31995/an.2025.v16i01.009

चैत्र मास धार्मिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण मास हैं, यह मास बहुत से पर्वों एवं धार्मिक भावनाओं से जुड़ा है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ही हिंदू समुदाय का नव वर्ष विक्रम संवत् प्रारंभ होता है, इसी दिन से बासंतिक नवरात्रि भी शुरू होती है। चैत्र शुक्ल नवमी को हिंदु समुदाय के आराध्य भगवान श्री राम का अवतरण हुआ था इसलिए इस दिन को रामनवमी के नाम से जाना जाता है। रामनवमी के दिन जो चैता गया जाता है उसके साहित्य में अधिकतर राम जन्म एवं उनके जीवन की अन्य घटनाओं का वर्णन होता है। एक किंवदंती के अनुसार चैत मास में श्री राम प्रकट हुए थे। इसलिए चैती गीत में हर पंक्ति के बाद ''रामा'' शब्द लगाया जाता है। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को ही जैन धर्म के प्रवर्तक तथा 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर का भी जन्म हुआ था। अतः चैत्र मास, जैन धर्म के लिए भी धार्मिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण मास है। चौथा के साहित्य में कहीं कहीं भगवान महावीर के जन्म का वर्णन हुआ है। चैता मुख्यतः दो प्रकार से गाया जाता है–(1) लोकगीत शैली (2) उपशास्त्रीय शैली। उपशास्त्रीय शैली में चैता गीत को ''चैती'' कहा जाता है और कहीं–कहीं लोकगीत शैली में भी चैता को ''चैती'' कहा जाता है। लेकिन उपशास्त्रीय शैली में इसे ''चैती'' ही कहा जाता है। लोकगीत शैली में भी चाहता दो प्रकार से गाया जाता है–(1) झलकुटिया चैता, (2) साधारण चैता।

झलकुटिया चैताः– झलकुटिया चैता दोनों हाथ से झाल बजाकर समूह में गाया जाता है। झाल एक लोक वाद्य है जो धातुओं से बना होता है। अधिकतर यह पीतल का होता है। झलकोटिया शब्द की उत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है– झाल+कूट+इया (प्रत्यय)। झाल कूटने की कल्पना से ही इस गीत का नाम झलकुटिया पड़ा है। स्पष्ट है कि इस प्रकार का चैता सामूहिक रूप से झाल कूटकर या बजाकर गाया जाता है।

साधारण चैताः– बहुधा एक ही गायक ढोल आदि वाद्यों के साथ इसे गाता है। यद्यपि यह समूह में भी गाया जाता है, किंतु इसमें जोश और मस्ती का वह उत्कर्श नहीं दिखाई पड़ता जो झलकुटिया चैता में होता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र, पंडित अंबिका दत्त व्यास, किशोरी लाल गोस्वामी, मलिक मोहम्मद जायसी आदि कवियों एवं मूर्धन्य विद्वानों ने चैता गीत एवं पद लिखकर चैता की साहित्यिक गरिमा को बढ़ाया।

भोजपुरी क्षेत्र में प्रचलित लोकगीत शैली का चैता बहुतायत से चांचर ताल में गाया जाता है फिर कहरवा में परिवर्तित हो जाता है और फिर वापस चांचर ताल में आ जाता है।

चैता मुख्यतः– सात एवं आठ मात्रा में गाया जाता है। सात मात्रा में अधिकतर रूपक या कहीं–कहीं 14 मात्रा वाले जत ताल में भी गाया जाता है। आठ मात्रा में गाए जाने वाले चैता का जो प्राचीन विभाजन है वह पांच एवं तीन मात्रा का है जबकि आधुनिक विभाजन के अनुसार आठ मात्रा का विभाजन चार–चार मात्रा के दो विभाग 'कहरवा' ताल के अनुसार ही होता है।

लोक शैली के चैता को शास्त्रीय गायकों ने स्वर एवं लय के माध्यम से बोल बनाव करते हुए छोटी–छोटी तान, बहलावा आदि से सजाकर गाया जिसे सुधी श्रोताओं द्वारा उदारता पूर्वक सराहा गया। इस प्रकार से उपशास्त्रीय शैली की चैती विकसित हुई जिसमें उपशास्त्रीय शैली की सभी विधाओं की तरह चैती में भी सौंदर्य वर्धन हेतु कण, खटक, मींड, मुर्की आदि से युक्त स्वरों का प्रयोग किया गया।

लोकगीत शैली का चैता किसी थाट विशेष की उपज नहीं है परंतु इसके स्वर समुदाय को देखते हुए उन्हें थाट में रखा जा सकता है। कहीं–कहीं चैता 'बिलावल' थाट में भी पाया जाता है। वहीं उपशास्त्रीय शैली की चैती को कुछ शास्त्रीय गांव ने राग 'पीलू' तो कुछ ने राग 'देश' एवं कुछ ने राग 'तिलक कामोद' में गाया है।

'गारा' जयजयवंती' एवं 'मिश्र खमाजइ' आदि रागों में भी उपशास्त्रीय शैली की चैती गाई जाती है।

सावनीः– सावन में गाए जाने वाले गीतों को सावनी कहा जाता है। सावन का प्रमुख त्यौहार रक्षाबंधन है जो श्रावण मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। सावन के गीतों में अधिकतर भाई बहन के प्रेम का वर्णन मिलता है।

हिंडोलाः– सावन मास देश का सबसे लोकप्रिय मास है। यह मास वर्षा ऋतु में आता है। सावन मास में गाए जाने वाला हिंडोला एक प्रमुख ऋतुकालीन गायन शैली है। विविध प्रकार के व्रत व त्यौहारों के साथ हिंडोला बहुत महत्वपूर्ण है।

बारहमासाः– बारहमासा उन गीतों को कहते हैं जिनमें किसी विरानी स्त्री के बारहों महीनों के दुखों का वर्णन होता हो। हिंदी साहित्य में बारहमासा लिखने की परंपरा प्राचीन है। साहित्यकारों के अलावा अनेक संत व कवियों ने बारहमासा लिखा है।

बारहमासा ढोलक आदि ताल वाद्य के साथ भी गाई जाती है और इसे बिना ताल के भी गाते हैं। बारहमासा में विरह, प्रेम के अलावा भगवान राम और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन होता है।

श्री दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह के मतानुसार बारहोंमास में ऋतुओं के प्रभावानुसार जिस मनोस्थिति की अनुभूति होती है, उसी को विरहणी नायिका ने अपने प्रीतम के वियोग में व्याकुल होकर जिस मार्मिक तरह से गाया है, उसी को बारहमासा का नाम दिया गया है।

भोजपुरी क्षेत्र में बारहमासा अधिक प्रचलित है, क्योंकि गांव के लोग इन गीतों को गाना और सुनना अधिक पसंद करते हैं क्योंकि उन्हें एक साथ ही बारहमासों के सुख–दुख का दृश्य सामने दिखाई पड़ने लगते है। बारहमासा प्रायः आषाढ़ मास के वर्णन से प्रारंभ होता है और जेठ मास में समाप्त होता है।

प्रेम मार्गी कवि मलिक मोहम्मद जायसी एक उच्च कोटि के सूफी संत थे। 1467 इसवीं से 1552 इसवीं तक इनका जीवन काल माना जाता है। चूंकि इनका जन्म उत्तर प्रदेश के अमेठी जिले के 'जायस' ग्राम में हुआ था इसलिए ये जायसी कहलाए। उनके अनुसार बारहमासा मूलतः एक विरह प्रधान लोक संगीत है। अखरावट, चित्ररेखा, मसला और पदमावत इनकी प्रमुख रचनाएं है। बारहमासा देश के हर क्षेत्र में अलग–अलग नाम से जाने जाते हैं। बारहमासा की प्रकृति विरहिणी का रूप है। विषयवस्तु की दृष्टि से बारहमासी में एकरूपता पाई जाती है।

छमासाः– यह बारहमासा का ही एक संक्षिप्त रूप है। इसका वर्ण्य विषय बारहमासा की तरह ही होता है। अंतर मात्र इनता है कि इनमें केवल छः महीनों का वर्णन होता है। छमासा के गीत अपेक्षाकृत कम प्रचलित है। यह शैली अब विलुप्त प्रायः है।

ऋतु से संबंधित गायन शैलियों का आधार लोकजीवन की अनुभूतियों पर टिका हुआ है, परन्तु इसकी रचना में शास्त्रीय संगीत के तत्वों की बजाय लोकसंगीत की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

ऋतुओं से संबंधित गायन शैलियाँ

ऋतु से संबंधित गायन शैलियों में कुछ गायन शैलियां कम प्रचलित हैं, जैसे–बारहमासा, सावनी। वहीं कुछ गायन शैलियां लोकप्रिय एवं प्रचलित हैं। जैसे–होरी, कजरी, हिंडोला एवं चैती।

होरी और कजरी ने तो लोकप्रियता के नए आयाम छुएं हैं। यह गायन शैलियां इतनी प्रचलित हो चली हैं कि शास्त्रीय गायक इसको उपशास्त्रीय शैली के रूप में प्रस्तुत करने लगे हैं।

https://doi.org/10.31995/an.2025.v16i01.009

ऋतु विशेष में गाए जाने वाले गीतों की विशेषताएँः–

1. स्वरों का प्रयोग

इन गायन शैलियों में प्रयुक्त राग शास्त्रीय ढाँचे में बँधे हुए नहीं होते, फिर भी इनमें रागदारी की अनुभूति होती है। स्वरों का प्रयोग पूर्णतः गायक की भावाभिव्यक्ति एवं परंपरा पर निर्भर करता है। ऋतुओं से संबंधित गायन शैलियों में प्रयुक्त स्वर, ऋतु विशेष की प्रकृति के अनुसार ही होते हैं।

2. ताल एवं लयः–

ऋतु विशेष से संबंधित गायन शैलियों में सबसे प्रमुख तालें होती हैं– दादरा, कहरवा, आदि। इन तालों की गति ऋतु विशेष की प्रकृति को दर्शाती है–जैसे सावन में झूले की लय के अनुसार हिंडोला या सावनी गीत की लय होती है। उदाहरण के लिए बसंत के गीतों में विलंबित से मध्य लय एवं वर्षा के गीतों में मध्य से द्रुत लय का प्रयोग होता है।

3. भावाभिव्यक्ति एवं रसः–

ऋतुओं से संबंधित सभी गायन शैलियों में श्रृंगार रस का समावेश होता है। इसके अलावा शांत, करुण, वीर रस आदि की रचनाएं भी इन गायन शैलियों में मिलती हैं। इसमें शुद्ध सुरों का विशेष महत्व होता है। हालांकि कहीं कहीं कोमल एवं तीव्र स्वरों का प्रयोग देखने को मिलता है।

ऋतुओं से संबंधित गायन शैलियों की लोक परंपरा में सांगीतिक प्रस्तुतिः–

लोक संगीत में ऋतुओं का वर्णन अधिक सहज, सजीव और जीवन से जुड़ा हुआ मिलता है। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश और बिहार में सावन के महीने में गाई जाने वाली कजरी और झूले अत्यंत लोकप्रिय हैं।

इन गायन शैलियों की संरचना में ताल और लय अधिक सरल होती है, किन्तु भावनात्मक दृष्टि से यह अत्यंत प्रभावशाली होती है। इनमें प्रायः ढोलक, झांझ और मंजीरे का प्रयोग होता है, परंतु आधुनिक काल में आम तौर पर हारमोनियम, बैंजो और तबला भी देखने को मिलता है।

सामाजिक– सांस्कृतिक प्रभावः–

ऋतुओं से संबंधित गायन शैलियां संगीत की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक जीवन, त्योहारों, और परंपराओं से गहराई से जुड़े हुए हैं। वसंत पंचमी, होली, तीज, रक्षाबंधन, दशहरा जैसे त्योहारों पर गाए जाने वाले गीतों में ऋतुओं की छाप स्पष्ट होती है। इन गीतों ने सामाजिक समरसता को भी बढ़ावा दिया है।

निष्कर्षः–

ऋतुओं से संबंधित गायन शैलियाँ भारतीय संगीत की आत्मा है। ये न केवल सुरों की कोमलता को दर्शाती हैं, बल्कि मानवीय भावनाओं और प्रकृति के बीच गहरे संबंध को भी उजागर करती है। यह अध्ययन यह सिद्ध करता है कि यह गायन शैलियां और उनसे संबंधित स्वर और ताल केवल संगीतमय रचनाएँ नही हैं, बल्कि ये जीवन के उत्सव, विरह, भक्ति, उल्लास और शांति के प्रतीक हैं।

संगीत का यह अद्भुत पक्ष, जो ऋतु के साथ बहता है, भारतीय परंपरा की एक अनमोल धरोहर है, जिसे संजोकर रखना आवश्यक है। भविष्य में इस पर और अधिक शोध किए जाने की आवश्यकता है ताकि अगली पीढ़ियाँ भी इस सांगीतिक धरोहर से जुड़ सकें, और अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सके।

संदर्भः

1. लक्ष्मी गणेश तिवारी, लोकगीत– उत्तर प्रदेश (डी.के.प्रिंटवर्ल्ड) पृष्ठ–**208–210** (कजरी व्याख्या)
2. लक्ष्मी गणेश तिवारी, आई.बी.आई.डी., पृष्ठ–**165–167** (होरी/फाग/फगुआ)
3. लक्ष्मी गणेश तिवारी, आई.बी.आई.डी., पृष्ठ–**213–215** (सावन/सावनी)
4. लक्ष्मी गणेश तिवारी, आई.बी.आई.डी., पृष्ठ–**227–229** (झुला/हिंडोला)
5. डॉ. तापसी घोष, इवोल्यूशन ऑफ फ़ोल्क म्यूज़िक टू सेमी क्लासिकलकृकृ कजरी एंड चैती, आर. आर.आई.एज.एम., मई 2019, पृष्ठ–**1158–1161** कजरी तथा चैती का विकास।
6. डॉ0 शांति जैन, कजरी लोकगीतः मैकेनिज्म फॉर इमोशनल रेगुलेशन, रूप कथा वॉल्यूम 16 नंबर 1 (2024), पृष्ठ–**1–2** कजरी में भावनाओं का मंचन
7. ''कजरी'', विकिपीडिया, कजरी का उत्पीड़न, राग–ठाठ व क्षेत्रीय विकास
8. ''चैती'', विकिपीडिया, चैती गायन की समयावधि व धार्मिक– श्रृंगार रस
9. राधवल्लभ चतुर्वेदी, ऊँची अटारिया रंग भरी, कजरी/चैती में लोक–संगीत संरचना।
10. पंडित राधावल्लभ चतुर्वेदी, ऊँची अटारिया रंग भरी, पृष्ठ–**10–12** भारतीय लोकधार्मिक गायन संरचना।
11. लाल खडग बहादुर मल्ला, सुधाबुन्द (1884), पृष्ठ–**45–47** भोजपुरिया कजरी संकलन।
12. कालिदास, ऋतुसंहार, (अनुवाद एवं टीका), उदय प्रकाशन, पृष्ठ–**20–22**, वसंत–ऋतु में ''कामोत्सव'' का उल्लेखन्द्रीयं।
13. भारद्वाज, आर.के., भारतीय सांस्कृतिक रूपरेखा, यूनिवर्सिटी प्रेस (1990), पृष्ठ–**150–152**– ऋतु–मानसिकता का सांस्कृतिक अध्ययन।
14. तापसी घोष, ''फोल्क टू सेमी– क्लासिकलकृ'' पूर्वोक्ति लेख, पृष्ठ–**1159** लोक शास्त्रीय संधि सिद्धांत।
15. मिलन चौहान और स्वस्ति मिश्रा, ''क्रिएटिंग प्लेस :कृ कजरी फेस्टिवलकृ मिर्जापुर'', मलेशियन जर्नल ऑफ म्यूज़िक, वॉल्यूम 13 नंबर 2 (दिसंबर 2024), पृष्ठ–**62–64** कजरी त्योहार में सामाजिक स्थान निर्माण।